

## रहने दे मुझे यां कि अभी काम बहुत है

सुशील सिद्धार्थ

‘खुदा सही सलामत है’ और ‘ए.बी.सी.डी.’ के बाद ‘17 रानडे रोड’ रवीन्द्र कालिया का तीसरा उपन्यास है। अपनी कहानी ‘बुढ़वा मंगल’ में रवीन्द्र कालिया एक वाक्य लिखते हैं, ‘*दरअसल आप लोग कह.ानीकार से कुछ ज्यादा ही तवक्को करने लगे हैं।*’ एक अनूठे गद्यकार के रूप में रवीन्द्र कालिया ने जो ख्याति अर्जित की है उसके आधार पर यदि कोई ‘17 रानडे रोड’ से ‘कुछ ज्यादा ही तवक्को’ करता है तो इसमें गलत क्या है। यह सोचना भी गलत न होगा कि क्या इस उपन्यास में ‘उपन्यासकार रवीन्द्र कालिया’ ‘संस्मरणकार रवीन्द्र कालिया’ से बढ़त बना सके हैं? कारण यह कि ‘गालिब छूटी शराब’ जैसी अद्भुत संस्मरण पुस्तक ने लेखक के सामने एक शाश्वत रचनात्मक चुनौती खड़ी कर दी है। उस चुनौती से निपटने के क्रम में लेखक ने ‘17 रानडे रोड’ में अपनी एक औपन्यासिक अवधारणा भी प्रकट की है। बरसों बाद मुम्बई में सुप्रिया से मिलने पर सुदर्शन पुरुषार्थी उसे बताता है, ‘...मैं सम्पूरन को केन्द्र में रख कर एक उपन्यास लिख रहा हूँ।’ इस पर सुप्रिया ‘तथ्यों की शुद्धता’ जैसी चिन्ता व्यक्त करती है। इसके बाद सुदर्शन जाहिर लापरवाही के साथ कहता है : “*उपन्यास में सब चलता है। उपन्यास इतिहास नहीं होता। उसमें व्यक्ति एक छाया बन कर रह जाता है और कई बार छाया व्यक्ति बन जाती है।*” इस औपन्यासिक अवधारणा की रोशनी में यह उपन्यास पढ़ते हुए कथाकार रवीन्द्र कालिया की रचनाशीलता का बेहद दिलचस्प आयाम सामने आता है।

सम्पूरन उर्फ एस.के. ओबेराय (ओबी) उपन्यास का केन्द्रीय चरित्र है। अपने जीवन पर टिप्पणी करते हुए सम्पूरन कहता है : “*एक जिन्दगी मैंने बोरीबंदर के प्लेटफार्म पर शुरू की थी दूसरी जिन्दगी भायखला, माहिम, अंधेरी के गेस्ट हाउस की खटिया भर स्पेस से और अब मैं एक जन्म और जी लूंगा, सी फेस के इस फ्लैट में।*” सम्पूरन जैसे अपने आप से बात करने लगा : “*मुझे खुद नहीं मालूम कि मैं क्या करने जा रहा हूँ। मैं बस इतना जानता हूँ, मुझे अपनी वर्थ साबित करनी है। मेरी जेबें खाली हैं, बैंक एकाउंट तक नहीं है, मेरा अस्तित्व ही मेरा सरमाया है। मेरे लिए फ्लैट की अहमियत किसी स्टेशन के वेटिंग रूम या फुटपाथ से ज्यादा नहीं है। मैं कतार में नहीं लग सकता, मैं कतार में लगने के लिए पैदा ही नहीं हुआ।*” दरअसल सम्पूरन का यह आत्मस्वीकार ही ‘17 रानडे रोड’ का कथासार है। और यही उसका चरित्र भी। लेखक ने बड़े जतन और प्यार से सम्पूरन का चरित्र रचा (या रीक्रिएट) किया है। नब्बे फीसदी उपन्यास बीत जाने पर ही सम्पूरन की पृष्ठभूमि के बारे में पाठक कुछ जान पाता है। एक रिटायर कर्नल का बेटा ओबी पठानकोट का रहने वाला है। बड़ा भाई कैनेडा में है। वह हीरो बनने की धुन में बम्बई पहुंचा और लगातार संघर्ष कर रहा है। घर पर पिता और बुआ हैं जिनसे वह बरसों बाद मिलने जाता है, एक आर्थिक संकट में घिर जाने के बाद। ओबी के हिस्से में लाखों की सम्पत्ति है। ओबी दो तीन लाख की उम्मीद से गया था मगर बहन से तीस हजार रुपये और गोभी, गाजर, शलजम, नींबू और गलगल का अचार ही प्राप्त कर पाता है। ओबी की बातें सुन कर बहन कहती है ‘*सपने लेते रहा करो। सपने देखने की तुम्हारी पुरानी आदत है।*’ ओबी

पठानकोट से जैसे भाग ही लेता है। बहन को खुश करने के लिए ओबी ने कहा था 'बम्बई पहुंच कर मैं तो सिर्फ अचार से खाना खाऊंगा।' बम्बई पहुंच कर बहन के दिये अचार मुख्य बना कर वह एक पार्टी शो कर देता है — पिकिल एंड ड्रिंक्स। ओबी या सम्पूरन को समझने के लिए उसकी यह संक्षिप्त पठानकोट यात्रा बहुत मानीखेज है। सपना देखना सम्पूरन की पुरानी आदत है। और रिश्तों के साथ उसका विचित्र रिश्ता है। वहां पिता हैं जो असहाय हैं और जिनकी देखभाल बुआ करती हैं, जो स्वयं एकाकी और निस्सहाय हैं। सम्पूरन का वहां दम घुटता है। वह भाग खड़ा होता है। वह जैसे सपनों के पीछे भाग रहा है और सपने क्या हैं यह लगभग नहीं ही मालूम होता। सम्पूरन हीरो बनने आया होगा मुम्बई, मगर उपन्यास में उसका वृत्तांत 'अभिनेता बनने के लिए किये गये स्ट्रगल' के बाद का है। इस 'उत्तर स्ट्रगल समय' में उसका अभिनेता बनने का सपना कहीं नेपथ्य में खो चुका है। तो अब सम्पूरन का सपना क्या है? धन कमाना, प्रसिद्ध होना, प्रेम करना, बड़ा कारोबार खड़ा करना, फिल्म बनाना और ग्लेमर की दुनिया में दबदबा कायम करना! शायद यह सब... और शायद इनमें से कुछ भी नहीं। तो सम्पूरन चाहता क्या है? सम्पूरन होने का अर्थ क्या है? क्या एक नामालूम मंजिल की ओर इस शिद्दत से बढ़ते जाना कि 'न मंजिल है न मंजिल का पता है'!

रवीन्द्र कालिया ने अपने जीवनानुभव में संचित 'सम्पूरन' को बहुत आत्मीयता के साथ चित्रित किया है। मुसलसल बेचैनियों में घिरे सम्पूरन के इर्द गिर्द घूमता यह उपन्यास सचमुच एक फिल्म की तरह घटता है। सम्पूरन शुद्ध आज में जीता है, लेकिन वह क्षणवादी नहीं है। वह अस्तित्व को सरमाया मानता है, लेकिन अस्तित्ववादी नहीं है। सम्पूरन में एक 'अराजक अनुशासन' है जो हिन्दी उपन्यास में शायद पहली बार प्रकट हुआ है। एक समुद्र की तरह पछाड़ खाता कथानक अंतिम वाक्य तक आते आते लहरों की नयी यात्रा के लिए तैयार हो जाता है।

सम्पूरन का वृत्तांत लिखने के लिए रवीन्द्र कालिया ने अतिथि पात्रों की एक दिलचस्प युक्ति निकाली है। इन अतिथियों की अपनी कहानी भी कुछ कम रोचक नहीं है। ये पात्र कथा को गति देकर कुछ संदर्भ देकर पृष्ठभूमि में चले जाते हैं। अतिथि पात्र एक सुदर्शन पुरुषार्थी, दो स्वर्ण सिंह, तीन अद्भुत प्रेतात्मा, चार के.सी. मलकानी और पांच बम्बई। मुख्य कथा प्रारम्भ होने से पहले के ये पृष्ठ भी सम्पूरन को समझने का एक जरिया हैं। हालांकि पुरुषार्थी, स्वर्ण सिंह और बम्बई सम्पूरन की गाथा में बने रहते हैं। वह प्रेतात्मा भी, जो कभी अपने होने का एहसास पंखा गिरा कर देती है, कभी सुंदर स्त्री के रूप में सम्पूरन का पीछा करती है। अतिथि पात्र योजना एक कथा युक्ति है और इस पर संस्मरणात्मक शिल्प के दस्तखत हैं। अतिथि पात्र तीन के अंत में लेखक कहता है : "ये थे सम्पूरन के बारे में सुदर्शन साहब के कुछ संस्मरण। सुदर्शन ने उस रहस्य का भी पता लगा लिया था, जहां से सम्पूरन उसके लिए डेर सारा होजरी का सामान लाया था। अगले अध्याय में उसी का खुलासा होगा, जिससे सम्पूरन के व्यक्तित्व की कुछ और पर्तें खुलेंगी।" उपन्यास के हर अध्याय का लेखक ने एक 'कैची' शीर्षक रखा है। कुछ शीर्षक हैं— जरा कह दो सांवरिया से आया करे, दिल का राजा जेब का फकीर, ईंट के नीचे मिली चाबी की लाश, हमने तो जब कलियां मांगी, क्रैश करना पंखे का विमान की तरह इत्यादि। ये शीर्षक पूरे उपन्यास को जैसे कई दिशाओं से आकर भरते हैं, जैसे नदियां समुद्र को! कई बार हिन्दी गद्य के नये लोकतंत्र में विधाओं की आवाजाही की बहुत चर्चा होती है कि कहानी, संस्मरण, रेखाचित्र, निबंध, यात्रावृत्तांत वगैरह एक दूसरे में घुलते मिलते हुए अपनी अपनी विधा को नया आस्वाद देते हैं। '17 रानडे रोड' के संदर्भ में कहना होगा कि उपन्यास में संस्मरणों का यथार्थवादी प्रयोग कर लेखक ने एक अनूठा आस्वाद उत्पन्न किया है। सारे पात्र, सारे विवरण और सारी स्थितियां जैसे सम्पूरन का औपन्यासिक संस्मरण हैं।

भाग्य और संयोग इस उपन्यास के बीज शब्द हैं। इनका प्रभाव प्रायः हर मोड़ पर दिखता है। हालांकि सम्पूरन इनके भरोसे नहीं बैठा रहता। यह कहना ज्यादा मुनासिब होगा कि भाग्य और

संयोग जहां छिप कर खड़े रहते हैं, सम्पूरन उन्हें वहां जाकर पकड़ लेता है। पुरुषार्थी उपनाम सुदर्शन से जुड़ा है। लेकिन पुरुषार्थी है सम्पूरन।

दरअसल इस उपन्यास के दो अतिथि पात्र और हैं— भाग्य और संयोग। सम्पूरन के बिना तो एक बार उपन्यास की कल्पना की जा सकती है, मगर भाग्य और संयोग के बिना नहीं। यह भाग्य ही है कि मिसेज क्लिफ्टन ब्रिटिश एयरवेज के काउंटर पर सम्पूरन से विदा लेते लेते उसे ढेर सा रुपया और अपना छोटा सा दफ्तर दे जाती हैं। वह क्लिफ्टन की गाड़ी आयकर अधिकारी और रेस के शौकीन शिवेन्द्र तक पहुंचाने जाता है तो दुर्रेस्वामी उसे भविष्यवाणी से नवाजता है और बातों बातों में उसे शिवाजी पार्क वाले भुतहा फ्लैट की खबर लगती है। उसे खरीदने का विचार व्यक्त करता है तो शिवेन्द्र उसे पागल कहता है। सम्पूरन का उत्तर है, “मैं तो पहले से ही पागल हूं। पागल न होता तो अपने बाप का लम्बा चौड़ा कारोबार छोड़ कर बम्बई क्यों चला आता।” सम्पूरन फ्लैट के मालिक जाड़िया के पास पहुंचता है। पक्षाघात से पीड़ित जाड़िया की पत्नी फ्लैट की महिमा बताती है “...कि उसी फ्लैट ने इनकी यह हालत की है। वह भुतहा फ्लैट है। उसमें कितनी दुर्घटनाएं हो चुकी हैं। मर्डर, स्यूसाइड, बलात्कार, विक्षिप्तता, मुकदमेबाजी के अलावा इसमें रहने वालों का दिवाला तक पिट चुका है।” और ऐसा फ्लैट सम्पूरन के लिए एक नयी जिन्दगी का दरवाजा खोलता है। यह संयोग सम्पूरन की ‘वुड बी वाइफ’ सुप्रिया के साथ भी है। जब धारावाहिक के लिए विज्ञापन चाहिए थे, तब ‘अप्रत्याशित’ रूप से उसका ममेरा भाई एक लाख का विज्ञापन दिला देता है। वह पहले ममेरे भाई के घर आने वाली नहीं थी मगर ‘दशा और दिशा ने साथ दिया और वह चली आयी।’ और यह भी शायद भाग्य ही है कि सम्पूरन बड़े बड़े व्यक्तित्वों के सम्पर्क में आता रहता है। और यह भी भाग्य की विडम्बना है कि उसका धारावाहिक पास नहीं हो पाता और वह कहता है : ‘कल से तेरा खादिम फिर से अखबार बेचेगा।’ इस भाग्य और संयोग ने सम्पूरन को तो ‘आत्मविश्वास से ओतप्रोत’ बनाया ही है, पाठक को भी एक विचित्र सी असंगत मनःस्थिति दे दी है। पाठक कथा में जारी उखाड़ पछाड़ को उत्सुकता से पढ़ता रहता है वह कहीं बेचैन या परेशान नहीं होता। उसे लगता रहता है कि सम्पूरन का कुछ न कुछ हो ही जायेगा। सम्पूरन पर मंडराने वाले भाग्य और संयोग के फरिश्तों की परछाइयां सारे उपन्यास पर फैली हैं। इस दृष्टि से देखें तो उपन्यास के केन्द्रीय चरित्र के साथ ‘साधारणीकरण’ की समस्या आती है जबरदस्त ‘सम्प्रेषणीयता’ के बावजूद। यह चरित्र अपवादों में अपवाद है और पाठक सचमुच इसे कौतुक प्यार और प्रशंसा से निहारता रह जाता है। कुछ लोग अपवाद को अद्वितीय भी कह सकते हैं। भाग्य और पुरुषार्थ का द्वंद्व उपन्यास को कुछ और रंगत भी दे सकता था लेकिन उपन्यासकार कोई भी कठिन परिस्थिति आते ही कोई न कोई संयोग या युक्ति उपस्थित कर देता है। इससे सम्पूरन और सुप्रिया के जीवन संघर्ष की ज्यादा गम्भीर तस्वीर सामने नहीं आ पाती। ‘गम्भीर’ शब्द वैसे भी रवीन्द्र कालिया को ज्यादा सुहाता नहीं। उपन्यास की स्थितियों और इसके पात्रों की रचना में उन्होंने अपने सुपरिचित गम्भीरता विरोधी रवैये को अपनाया है। स्थितियों और पात्रों से लेखक का खिलंदड़ापन खिल कर सामने आया है। एक बात गौरतलब है। गम्भीरता शब्द मूल्यावान है, मगर कुछ लेखक इसे इतनी गम्भीरता से लेते हैं कि उनकी लेखनी मनहूसियत फैलाने का औजार बन जाती है। रवीन्द्र कालिया के कृतित्व (और व्यक्तित्व) में मनहूसियत और पाखंड वर्जित हैं। भावुकता विरोध कालिया की पहचान है। जहां जरूरत है वहां एक सांद्र संवेदनशीलता है। इसे सुप्रिया के माता पिता, भाई भाभी के प्रसंगों में पढ़ा जा सकता है। एक उदाहरण। घर में स्थान सीमित होने के कारण भाई भाभी या माता पिता की रतिक्रियाएं घर के अन्य सदस्य देखते/महसूस करते रहते हैं सुप्रिया एक रात देखती है “...पिता के जिस्म पर कोई कपड़ा नहीं था, सिर्फ जनेऊ था, जो एक लय में लगातार हिल रहा था। नीचे मां थी, एकदम निःशब्द।” इसके बाद वह छज्जे पर आ जाती है। कुछ देर बाद मां चुपचाप आती है और सुप्रिया के कंधे पर हाथ रख कर कहती है : “मैं भी तुम्हें कुछ नहीं समझा

सकती। तुम तो पढ़ी लिखी हो, मैं तो चाहती हूँ, तुम मेरी तरह मजबूर नहीं रहोगी। बहुत सी किल्लतें जुड़ी रही हैं औरतों के साथ। मजबूरियां भी।” सुप्रिया इन्हीं परिस्थितियों के कारण सम्पूरन के घर ‘17 रानडे रोड’ जाकर रहने लगती है और बाद में उसके बच्चों की मां बनती है। देखा जाय तो सम्पूरन बहुत से लोगों का आभारी है। फिर भी अगर उसके सामने ‘कृतज्ञता’ जैसा शब्द एक नया अर्थ ले लेता है। सम्भव है इस शब्द का जिक्र चलने पर वह कह दे ‘तुम चूतिया हो।’

उपन्यास का स्त्री संसार वैविध्यपूर्ण है। सुप्रिया उसकी मां जया, सुषमा सुप्रिया की भाभी और एक संक्षिप्त प्रसंग में बुआ व बहन से कथानक में मार्मिकता तथा विडम्बना के पक्ष खुलते हैं। अन्य चरित्रों की तरह उपन्यास के ‘स्त्री संसार’ के चरित्र भी विलक्षण हैं। चन्नी की पत्नी और बेटी सना, मंगर की नर्स बीवी, शुक्ला की पत्नी दीपा, कल्याणी, मणिमाला आदि से मिल कर बम्बई जैसी महामायानगरी में स्त्रियों के अस्तित्व रेखांकित होते हैं। रवीन्द्र कालिया अन्य सुदक्ष स्त्री विमर्शकारों की तरह स्त्री की हर गतिविधि को उसके संघर्ष से नहीं जोड़ देते। वे स्त्री की अतिभावुकता का मजाक भी उड़ाते हैं।

इस उपन्यास में मुम्बई के ग्लैमर वर्ल्ड की भी झलकियां हैं। इस ग्लैमर वर्ल्ड पर कुछ बहुत अच्छे उपन्यास लिखे गये हैं। राही मासूम रजा का ‘सीन 75’ और इस्मत चुगताई का ‘अजीब आदमी’ ऐसे ही उपन्यास हैं। गुरुदत्त की फिल्म ‘कागज के फूल’ की याद आ सकती है। रवीन्द्र कालिया ने भी इस दुनिया में सांस ले रही संगतियों विसंगतियों का चित्रण किया है। दत्त साहब के कब्जे में जाने के बाद सम्पूरन की विज्ञापन फिल्म की नायिका का व्यवहार इस दुनिया का एक सामान्य चलन है। लेखक ने प्रायः विभिन्न पार्टियों के माध्यम से ही ग्लैमर वर्ल्ड की छवियां देखी हैं। उसके पास इस दुनिया की गहराई में जाने का अच्छा अवसर था। खास कर तब जब उपन्यास का मुख्य पात्र सम्पूरन अभिनेता बनने के लिए ही बम्बई आया था। ऐसा होता तब ‘चिकने फेशियल की परतें’ ज्यादा उतरतीं और ‘दाग दाग उजाला’ ज्यादा दिखता। फिर भी रवीन्द्र कालिया ने जितना चित्रण किया है उससे वैभव और चमक दमक के पीछे छिपे जर्जर चेहरे उजागर तो होते ही हैं। इन चेहरों पर सक्रिय औपचारिकता की लहरें सुप्रिया को कई बार निराश करती हैं। एक पार्टी के बाद, “सुप्रिया जाकर खिड़की पर खड़ी हो गयी। वह समुद्र से बोर हो चुकी थी। पिछले कई वर्षों से बम्बई में लगातार समुद्र को निहारने से वह ऊब चुकी थी। एक जमाना था, समुद्र को देखते ही उसके भीतर लहरें उठने लगती थीं।” दूर का ग्लैमर वर्ल्ड सुहाना लगता है, इस सच को फिर एक बार यह उपन्यास रेखांकित करता है।

इस सच जैसे तमाम सच शायद अप्रत्यक्ष रूप से सम्पूरन सहित उपन्यास के पात्रों का पीछा करते रहते हैं। सम्पूरन डरता है कि कहीं कोई सच उसे दबोच न ले। लेखक के अनुसार “ओबी को कम रौशनी से नफरत थी, जो इस समय चारों तरफ पसरी थी।... काकाजी उसकी बेचैनी समझ रहे थे। उन्होंने घर की तमाम बतियां जला दीं। घर लौटने पर ओबी सबसे पहले यही करता था। यहां तक कि टॉयलेट और बराम्दे की बतियां भी जला देता था।” जरूरत से ज्यादा रौशनी की आदत भी भय पैदा करती है हो सकता है भीतर पसरे किसी संशय, भय, मोहभंग, फ्रस्टेशन के अंधकार से डरता सम्पूरन ऐसा करता हो। ...क्योंकि प्रकाश के साथ साथ अंधकार भी जीवन का एक जरूरी हिस्सा है। उपन्यास के पात्रों के मनोविज्ञान में उतरें तो लगता है कि उनके भीतर असुरक्षा, खालीपन और बेचैनी है, जिसे वे बाहरी तामझाम और व्यस्तता से छिपाना चाहते हैं। यानी ‘तुम इतना जो मुस्कुरा रहे हो/क्या गम है जिसको छिपा रहे हो।’ उपन्यास में पार्टियों की भरमार है। पार्टियां मिलने मिलाने से ज्यादा व्यापारिक सम्पर्क और खुद को व्यस्त और महत्वपूर्ण दिखाने का साधन हैं। लेखक ने पर्याप्त रुचि लेकर तमाम व्यंजनों और ड्रिक्स का वर्णन किया है। पुरानी शब्दावली में कहें तो यहां ‘शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध’ की एक भरी पूरी दुनिया ही सक्रिय है। वस्त्रों के साथ अंतःवस्त्रों का भी दिलचस्प वर्णन है। कई कई बार। यह मात्र वस्त्र वर्णन नहीं हो सकता। नहीं होना चाहिए। पाठक चाहे तो इन वस्त्रों के

पीछे मौजूद मानसिकताओं को निर्वसन देख सकता है। जब सम्पूरन 17 रानडे रोड का भुतहा फ्लैट खोलता है तो उसके वार्डरोब से बीसियों साड़ियां, दसियों ब्रा और ईरानी रेस्तरां के गल्ले की तरह टुंसे रुपये मिलते हैं। यह वार्डरोब पूर्व सिने नर्तकी मधुमालती का था जो पागल हो गयी थी। चीजों के पीछे भागने वाले और उनका ढेर लगाने वाले प्रायः पागल जैसे ही हो जाते हैं।

सम्पूरन के 'क्लास कैरेक्टर' को शिवेन्द्र का चरित्र एक पूरकता प्रदान करता है। शिवेन्द्र भी पैसे का धनी और भाग्य का बली है। कभी आयकर अधिकारी रहा। घोड़ों की खरीद करते करते रेस खेलते खेलते 'एक इतवार उसने पाया वह अचानक मिलियनेर हो गया है।' फिर 'यह जिन्दगी कितनी हसीन है' फिल्म बनायी जो शान से पिट गयी। इसके बावजूद शिवेन्द्र की आपाधापी बरकरार है। सम्पूरन और शिवेन्द्र का जोड़ जरीवाला जैसे उद्योगपति से बिल्कुल अलहदा है। सम्पूरन जिस तरह कमाता है उसी तरह गंवाता है। जिनसे उधार लेता है उनकी जेबें रुपयों से भर देता है। यह पैसे से प्रतिशोध लेता चरित्र है जो आत्मविश्वास और मस्ती के रंग में डूबा है। फिर भी केवल इसी आधार पर उसे 'आज की धुर पूंजीवादी व उपभोक्तावादी दुनिया में एक एंटीडोट' नहीं कहा जा सकता। यह अराजकता वस्तुतः व्यक्तिवाद का एक भिन्न रूप है। बहुत सारे लोग यह उपन्यास पढ़ कर यदि 'एंटीडोट' बनना चाहें भी तो असम्भव है। उन्हें सम्पूरन जैसा भाग्य और अवसर चाहिए। सम्पूरन अपने किसी अबूझ सपने के पीछे भाग रहा है। इसके लिए व्यक्तियों और स्थितियों का बेहिचक प्रयोग करता चलता है। यहां तक कि रुपया उगाहने के लिए सुप्रिया को सलाह देता है कि जरीवाला को फोन कर कहे कि उससे एकांत में मिलना है। उससे पहले सुप्रिया एक पार्टी में जरीवाला के चुम्बन का उत्तर थप्पड़ से दे चुकी है। वह झिझकती है तो सम्पूरन समझाता है, 'सारी रात पड़ी है। होमवर्क करेंगे। बहुत सोच समझ कर स्टोरी बना कर बात करेंगे।' वस्तुतः रवीन्द्र कालिया एक बेहद अनायास दिखती शैली में सम्पूरन की सम्पूर्ण लीला का भेद भी खोलते हैं। तत्काल निर्णय लेने वाला सम्पूरन दरअसल स्टोरी बना कर और होमवर्क करके भी काम करता है। वह सुप्रिया को जरीवाला के लिए एक ब्यूटी पार्लर में किसी वस्तु की तरह तैयार करवाता है।

यह बात बिल्कुल सही है कि खिलंदड़े अंदाज में लिखा गया यह उपन्यास सावधानीपूर्वक पढ़े जाने की मांग करता है। वरना बहुत सारी बातें 'ओवरलुक' हो सकती हैं। वर्णन और विवरण में तो रवीन्द्र कालिया की कथा भाषा का कौशल है ही, जहां कहीं मौका मिला उनकी भाषा ने ज्यादा गहरे अर्थ भी उक्रे हैं, 'ऐसा लग रहा था कि चादर बिछा कर कोई अचानक गायब हो गया है और समय ने उस पर इत्मीनान से विश्राम किया है।' सबसे बड़ी बात यह कि '17 रानडे रोड' सुसम्पादित उपन्यास है। रवीन्द्र कालिया के लेखक के साथ उनके सम्पादक ने पूरा सहयोग किया है। अर्थात् 'कुछ भी अतिरिक्त नहीं।' पूरा उपन्यास सम्पूरन की भाग्य समर्थित जिजीविषा का अत्यंत रोचक वृत्तांत है। यह बात अलग है कि इस उपन्यास में देश और काल की समावेशी सक्रियता देखना जरा कठिन काम है। सम्पूरन के लिए ही जैसे गालिब की यह पंक्ति है : 'रहने दे मुझे यां कि अभी काम बहुत है'।

17 रानडे रोड : रवीन्द्र कालिया, प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, मूल्य : 300.00 रु.